भारत की खोज : हमारी नोनिया मिट्टी से अंग्रेजों ने दुनिया पर कब्जा किया

कहते हैं कि नेपोलियन के हार की एक बड़ी वजह बारूद के इस मसाले पर अंग्रेजों का कब्जा था. दास लिखते हैं: “वाटरलू की लड़ाई जीतने की एक वजह ईस्ट इंडिया कंपनी का बिहार के चौर मैदानों पर कब्जा था, जहां से बारूद का मसाला आया करता था.“

पारंपरिक सवारी बैलगाड़ियों में टप्पर लगे होते थे. वही टप्पर जिसमें ओहार लगा कर हीरामन गाड़ीवान कंपनी की जनाना को फारबिसगंज मेले ले गया था. वही टप्पर गाड़ी जिसमें सवार होकर देवदास आखिरी बार पारो से मिलने उसकी ससुराल गया था.

गाँव से गुजर रही टप्पर वाली गाड़ी में अगर ओहार या पर्दा लगा हो तो लोग समझ जाते थे कि ‘बिदागरी’ है – नई-नवेली दुल्हन ससुराल या नैहर जा रही है. धूल का गुबार उड़ाते बच्चे उसके पीछे दौड़ लगाते थे – लाली-लाली डोलिया में, लाली रे दुलहिनिया.

टप्पर वाली गाड़ी सबके दरवाजों पर मिल जाती थे. पर कई पुराने जमींदारों के यहाँ सम्पनी गाड़ी भी देखी जाती थी. यूरोप-अमरीका के स्टेज-कोच की तर्ज पर बनी लकड़ी की डिब्बानुमा बैलगाड़ी. घुसने के लिए एक दरवाजा और हवा के लिए खिड़कियां. हथिया-झाट बारिश में भींगने से न टप्पर बचा पाता था, न ओहार. सम्पनी ही काम आती थी.

आज उसी सम्पनी गाड़ी का. किस्सा. इस कहानी में बतरस तो है ही इतिहास का वह पन्ना भी छुपा है जिसके सहारे अंगेज़ों ने इतना बड़ा साम्राज्य खड़ा किया कि उसमें कभी सूरज नहीं डूबता था.

नोनिया मिट्टी से बारूद

बाकी हिंदुस्तान पर अंग्रेजों ने कब्जा भले 19वीं सदी में जमाया हो, बंगाल-बिहार-ओडिशा पर उनका कब्जा 100 साल पहले ही हो गया था. गोरे व्यापारी यहाँ से अनाज, अफीम, चावल, कपास ही नहीं गंगा-गंडक-कोशी कछार की मिट्टी भी यूरोप ले जाते थे.

इस इलाके में लोनी मिट्टी या नोनिया मिट्टी मिलती है. नोनिया नाम की जाति इस मिट्टी से नमक बनाया करती थी. नोनिया हमारे केमिकल इंजीनियर थे. उनके पास नोन ही नहीं, इस मिट्टी से शोरा बनाने की कला भी थी.

आईने अकबरी के मुताबिक हिंदुस्तान में शोरे या पोटैशियम नाइट्रेट का इस्तेमाल बारूद बनाने के अलावा कपड़ा धोने, एंटीसेप्टिक मलहम बनाने, लाख को डाइ करने, पेय पदार्थ ठंडा करने, मटन-मछली को सुरक्षित रखने और खाद के लिए किया जाता था.

पर पश्चिम में 13वीं शताब्दी से ही शोरे ज्यादातर बारूद बनाने के काम आ रहा था. एक समय ऐसा

आया कि शोरा को पश्चिम में सफेद सोना कहा जाने लगा और यह बिहार का एक प्रमुख निर्यात हो गया.

इस व्यापार के लिए गोरों ने बिहार-बंगाल-ओडिशा में जगह-जगह फैक्ट्रियाँ बनाई. ये फैक्ट्री कारखाने नहीं, ट्रेडिंग आउटपोस्ट थे – मारवाड़ियों के गोला और गद्दी का मिला-जुला स्वरूप. फैक्ट्री के कम्पाउन्ड में वे रहते भी थे, माल भी रखते थे और हिफाजत के लिए हथियारबंद सिपाही भी.

डच ईस्ट इंडिया कंपनी की ही दो फैक्टरियाँ पटना में हुआ करती थीं. वहाँ शोरा रिफाइन करने के लिए 1651 में उन्होंने एक कारखाना भी बनाया था. कुछ साल बाद छपरा में दूसरा कारखाना खोला.

बैलगाड़ी से कलकत्ता का सफर
यूरोप के व्यापारियों के लिए शोरे का आयात भारी मुनाफे का सौदा था. नए उपनिवेश पर कब्जा करने की लड़ाई में लगे मुल्कों में बारूद की मांग काफी बढ़ गई. सफेद शोरे की कीमत ढाई रुपए मन हो गई, जबकि गेहूं एक रुपए मन मिलता था.
शोरा बैलगाड़ी से गंगा या गंडक तक ले जाते थे, वहाँ से नाव से कलकत्ता, फिर जहाज से यूरोप. बरसात के दिनों में बैलगाड़ी से शोरा ढोना घाटे का सौदा था. पानी इस सफेद सोने को बर्बाद कर देता था. सो, शोरे को ढोने के लिए सम्पनी गाड़ी बनी. यह व्यापार ब्रिटिश और डच ईस्ट इंडिया कंपनियों के हाथ में था. लोग इसे कंपनी गाड़ी कहने लगे. कंपनी से धीरे-धीरे बन गया सम्पनी !

बिहार की सामाजिक-आर्थिक परतों को समझने के लिए अरविन्द नारायण दास की द रिपब्लिक ऑफ बिहार अपने प्रकाशन के 30 साल बाद भी शायद सबसे अच्छी किताब है. वे लिखते हैं कि 18वी सदी के अंत तक भारत से शोरे की तिजारत में फ्रांस लगभग बाहर हो गया था और ब्रिटेन की मोनोपॉली हो गई थी. कहते हैं कि नेपोलियन के हार की एक बड़ी वजह बारूद के इस मसाले पर अंग्रेजों का कब्जा था. दास लिखते हैं: “वाटरलू की लड़ाई जीतने की एक वजह ईस्ट इंडिया कंपनी का बिहार के चौर मैदानों पर कब्जा था, जहां से बारूद का मसाला आया करता था.“

नोनिया विद्रोह
1764 में बिहार पर अंग्रेजों के पूरी तरह कब्जे के बाद नोन और शोरा बनाने वाले नोनिया लोगों की मुसीबत हो गई. 17वीं सदी में शोरे के व्यापार पर रिसर्च करने वाली डा शुभ्रा सिन्हा के मुताबिक नोनिया तब तक अंग्रेजों के अलावा डच, फ्रांसीसी और पुर्तगालियों ही नहीं, आर्मेनिया और फारस के व्यापारियों को भी माल बेचते थे. स्थानीय व्यापारी तो थे ही. मोनोपॉली का फायदा उठाते हुए अंग्रेजों शोरा औन-पौन दाम पर खरीदना शुरू किया. नाराज नोनिया विद्रोहियों ने 1771 में छपरा में ईस्ट इंडिया कंपनी की एक फैक्ट्री लूट कर उसमें आग लगा दी. कंपनी ने किसानों को अफीम, कपास और नील जैसे कैश क्रॉप उपजाने पर मजबूर किया. दाम वही तय करते थे. उपर से जब चाहें उपज खरीदने से मना कर देते थे. किसान कंगाल हो गए और गोरे मालामाल.

पटना के चावल को यूरोप में बेचकर स्कॉटलैंड के कई लोग धन्ना सेठ बन गए. कई सदी बाद अभी भी उसकी याद ताजा है. पटना से 11,000 किलोमीटर दूर स्कॉटलैंड में भी पटना नाम का एक कस्बा है ! बिहार के पटना में जन्मे विलियम फुलर्टन ने 1802 में इस कस्बे की स्थापना की थी. वहाँ एक पटना स्कूल भी है. उस स्कूल का लोगो है – आपने सही अंदाज लगाया – धान की बाली !

एनके सिंह वरिष्ठ पत्रकार हैं व चार दशक से पत्रकारिता जगत में सक्रिय. इंडियन एक्सप्रेस, हिंदुस्तान टाइम्स, दैनिक भास्कर में संपादक रहे. समसामयिक विषयों के साथ-साथ देश के सामाजिक ताने-बाने पर लगातार लिखते रहे हैं.

साभार- https://hindi.news18.com/blogs/ से